राज नारायण

वनाम

अधीक्षक, केन्द्रीय जेल, नई दिल्ली

(Raj Narain

Vs.

Superintendent, Central Jail, New Delhi)

(11 सितम्बर, 1970)

(मुख्य न्यायाधिपति एम० हिदायतुल्लाह, न्या० जे० एम० शैलत, वी० भार्गव, जी० के० मित्तर, सी० ए० वैद्यलिंगम्, ए० एन० रे और आई० डी० दुआ)

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5)—धारा 344—मजिस्ट्रेट का गिरफ्तार व्यक्ति को न्यायिक अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित करना—उससे आगे कैदी की अनुपस्थिति में किया गया प्रतिप्रेषण अवैध नहीं है।

पिटीशनर को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 107/117 के अधीन 20 अगस्त, 1970 को गिरफ्तार किया गया था और लखनऊ के सिटी मजिस्ट्रेट द्वारा न्यायिक अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित किया गया था। बन्दी प्रत्यक्षीकरण (हैबियस कार्पस) के रिट के लिए एक पिटीशन इस न्यायालय में फाइल किया गया और 22 अगस्त, 1970 को इस न्यायालय ने उसे न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से हाज़िर होने के लिए तिहाड़ केन्द्रीय जेल, दिल्ली में अन्तरित किए जाने का आदेश दिया। सिटी मजिस्ट्रेट द्वारा यथा आदिष्ट पिटीशनर का मूल प्रतिप्रेषण 28 अगस्त, 1970 तक था। उस दिन अपराह्न 4 बजे केन्द्रीय जेल, दिल्ली के अधीक्षक ने इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि प्रतिप्रेषण अर्द्धरात्रि को समाप्त हो जाना था न्यायालय से निदेशों की प्रार्थना की। न्यायालय

1970(9) eILR(PAT) SC 22

ने यह आदेश दिया कि ऐसी स्थिति में पिटीशनर को उसी अभिरक्षा में वापस भेज दिया जाए जहां से वह आया था और यदि वह चाहे तो उसे उत्तर प्रदेश ले जाया जाए और अगली सुनवाई के समय न्यायालय के समक्ष पेश किया जाए और यदि अर्धरात्रि तक कोई नये प्रतिप्रेषण आदेश प्राप्त नहीं होते तो पिटीशनर को अर्धरात्रि के समय मुक्त कर दिया जाए। उसी दिन लखनऊ के जिला मजिस्ट्रेट से केन्द्रीय जेल, दिल्ली के अधीक्षक को एक बेतार सन्देश प्राप्त हुआ जिसमें यह सूचना दी गई थी कि लखनऊ के सिटी मजिस्ट्रेट ने पिटीशनर का प्रतिप्रेषण 1 सितम्बर, 1970 तक बढ़ा दिया है। उसके अगले दिन लखनऊ के सिटी मजिस्ट्रेट से एक तार प्राप्त हुआ जिसमें अधीक्षक को सूचित किया गया था कि पिटीशनर को 10 सितम्बर, 1970 तक के लिए न्यायिक अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित किया गया है। साथ ही जिला मजिस्ट्रेट ने इस न्यायालय को यह सूचना दी कि पिटीशनर का प्रतिप्रेषण 10 सितम्बर, 1970 तक बढ़ा दिया गया है। पिटीशनर ने नये प्रतिप्रेषण आदेशों की वैधता को चुनौती देते हुए एक अन्य पिटीशन इस न्यायालय के समक्ष मुख्य रूप से इस आधार पर फाइल किया कि वे प्रतिप्रेषण आदेश उसकी अनुपस्थिति में किए गए थे। पिटीशन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—(मुख्य न्यायाधिपति हिदायतुल्लाह, न्या० भार्गव, मित्तर, रे और दुआ के अनुसार)—यदि मजिस्ट्रेट कैदी को अपने समक्ष तब पेश कराना चाहे जब वह उसे आगे अभिरक्षा के लिए पुनः सुपुर्द करे तो कोई मजिस्ट्रेट, परिस्थितियां जिस प्रकार अनुज्ञात करें, केवल उसी प्रकार कार्य कर सकता है। वस्तुतः, न्यायालय वैसे ही मामलों का विचारण करते समय अभियुक्त व्यक्ति की अनुपस्थिति में प्रतिप्रेषण का आदेश करना आवश्यक समझ सकता है, उदाहरणार्थ ऐसी दशा में जब अभियुक्त इतना गम्भीर रूप से रुग्ण है कि विचारण को स्थगित करना होगा और उसे न्यायालय में नहीं लाया जा सकता और ऐसे मामले में अभियुक्त को न्यायालय में पेश किए बिना किया गया आदेश अविधिमान्य नहीं होगा। (पैरा 7 और 8)

अभियुक्त ने जमानत नहीं चाही है अथवा अपने काउंसेल की मार्फत हाजिर होना नहीं चाहा है। उसने अपने निरोध के सिवाय किसी बात की शिकायत नहीं की है जिसे उन्होंने तकनीकी कारणवश

अभिनिर्धारित––इन परिस्थितियों में मध्यक्षेपी को हिन्दी में अपनी बहस जारी करने की अनुज्ञा देना व्यर्थ था। न्यायालय की भाषा अंग्रेजी होने के कारण और मध्यक्षेपी के उसको दिए गए किसी भी सुझाव से सहमत न होने के कारण न्यायालय के पास उसके मध्यक्षेप को रद्द करने का ही विकल्प रह गया था।

आरम्भिक अधिकारिता : 1970 का रिट पिटीशन संख्या 307.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन बन्दी-प्रत्यक्षीकरण (हैबियस कार्पस) की प्रकृति के रिट के लिए फाइल किया गया रिट पिटीशन।

पिटीशनर संख्या 1 की ओर से	पिटीशनर स्वयं उपसंजात हुआ
पिटीशनर संख्या 2 की ओर से	सर्वश्री के० राजेन्द्र चौधरी और प्रताप सिंह
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री सी० डी० दफ्तरी, एल० एम० सिंघवी और ओ० पी० राणा
भारत संघ की ओर से	श्री निरेन डे, भारत के महान्यायवादी, सर्वश्री आर० एच० ढेबर, एच० आर० खन्ना, एस० पी० नायर और आर० एन० सचदे
मध्यक्षेपी की ओर से	सर्वश्री एस० सी० अग्रवाल, डी० पी० सिंह और राज नारायण (स्वयं उपसंजात हुआ)

आदेश

श्री राज नारायण ने कल हिन्दी में बहस करने का आग्रह किया। उसे कुछ समय के लिए इस दृष्टिकोण से सुना गया जिससे कि यह, सुनिश्चित किया जा सके कि क्या हम उसकी बात को समझ सकते हैं, इस सादे कारणोंवश क्योंकि यह नागरिक की स्वतन्त्रता अन्तर्वलित करने वाला बन्दी-प्रत्यक्षीकरण पिटीशन है। मामले के महत्व के कारण हमने उसे कुछ समय के लिए सुना किन्तु महान्यायवादी श्री दफ्तरी जो उसका विरोध कर रहे हैं और न्यायपीठ के कुछ सदस्य कल हिन्दी में की गई बहस को नहीं समझ सके। इन परिस्थितियों में श्री राज नारायण को अपनी बहस हिन्दी में जारी रखने की अनुज्ञा देना व्यर्थ है। उनके पास

पहले से ही श्री डी० के० सिंह नामक काउंसेल हैं और वे उनकी मदद कर रहे हैं। हमने निम्नलिखित तीन विकल्पों का सुझाव दिया--

(क) यह कि वह अंग्रेजी में बहस करें; अथवा

(ख) वह अपने काउंसेल को अपना पक्षकथन प्रस्तुत करने की अनुज्ञा दें; अथवा

(ग) वह अपने लिखित तर्क अंग्रेजी में दें।

2. इस न्यायालय की भाषा अंग्रेजी है (देखें संविधान का अनुच्छेद 348) यदि श्री राज नारायण इन सुझावों से सहमत नहीं हैं और हम यह समझते हैं कि वे नहीं हैं तो हमारे समक्ष उसके मध्यक्षेप को रद्द करने का ही एकमात्र विकल्प है। हम तदनुसार आदेश देते हैं।

मध्यक्षेप रद्द किया गया।

श०

वैध बताया है क्योंकि उन्हें मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश नहीं किया गया था। ऐसा कोई कारण नहीं है जिससे कि हमें श्री राज नारायण की मुक्ति का आदेश करना चाहिए जब कि हमारा यह समाधान हो गया है कि उन्हें मजिस्ट्रेट द्वारा समुचित प्रतिप्रेषण के आधार पर निरुद्ध किया गया है और हमारे द्वारा मुक्ति को न्यायोचित ठहराने की कोई परिस्थितियां नहीं हैं। (पैरा 7 और 8)

उन कैदियों को, जिनका विचारण किया जा रहा है, इस न्यायालय के समक्ष आरम्भिक आदेश के आधार पर लाया जाता है और इस न्यायालय की अभिरक्षा में रखा जाता है। यह मजिस्ट्रेट की ओर से अन्तरित अभिरक्षा का मामला है। मजिस्ट्रेट अपने आदेश द्वारा कैदी को हमारी अभिरक्षा से वापस नहीं बुला सकता और उससे केवल यह अपेक्षा की जाती है कि वह मामले को स्थगित करते समय जेल प्राधिकारियों को, कैदी को और इस न्यायालय को यह प्रज्ञापित करे कि मूल प्रतिप्रेषण बढ़ा दिया गया है। ऐसी विशेष परिस्थितियों में यह विधि की अपेक्षाओं का पर्याप्त अनुपालन है। मजिस्ट्रेट से संहिता की धारा 344 के अधीन से अधिक कुछ करने की प्रत्याशा करना उससे ऐसी परिस्थितियों में एक असम्भव बात की प्रत्याशा करना होगा और विधि किसी असम्भावित को अनुध्यात नहीं करती। (पैरा 8 और 9)

(न्या० शैलत और वैद्यलिंगम् के अनुसार)--यह बात तर्कसंगत है कि प्रतिप्रेषण का आदेश अभियुक्त की उपस्थिति में पारित किया जाएगा। अन्यथा स्थिति यह होगी कि मजिस्ट्रेट अथवा न्यायालय अभियुक्त की पर्याप्त लम्बे समय तक सुनवाई किए बिना प्रतिप्रेषण का आदेश यंत्रवत् पारित करेगा। यदि अभियुक्त प्रतिप्रेषण का आदेश पारित किए जाने के समय मजिस्ट्रेट के समक्ष है तो वह यह अभ्यावेदन कर सकता है कि कोई प्रतिप्रेषण आदेश पारित नहीं किया जाना चाहिए और अतिरिक्त प्रतिप्रेषण के लिए किसी प्रस्ताव का भी विरोध कर सकता है। उदाहरणार्थ वह मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा लगाई जा रही असाधारण विलम्ब का अवलम्ब ले सकता है और न्यायालय का यह समाधान करने का प्रयत्न कर सकता है कि अतिरिक्त प्रतिप्रेषण मंजूर नहीं किया जाना चाहिए। पुनः यह सम्भव है कि किसी अभियुक्त ने पूर्ववर्ती अवसर पर अपने को मुक्त कराने के लिए बंधपत्र निष्पादित करने से इंकार किया

हो किन्तु बाद में जब अतिरिक्त प्रतिप्रेषण पर विचार किया जा रहा हो तो अभियुक्त ने स्थिति पर पुनः विचार किया हो और वह बंधपत्र निष्पादित करने के लिए रजामंद हो सकता है जिस दशा में प्रतिप्रेषण आदेश बिल्कुल अनावश्यक होगा । हमारी यह राय है कि यह तथ्य कि सम्बद्ध व्यक्ति जमानत पर मुक्त किए जाने की वांछा नहीं करता अथवा यह कि वह मजिस्ट्रेट को लिखित अभ्यावेदन कर सकता है इस प्रश्न से असम्बद्ध है । उदाहरणार्थ ऐसे मामलों में जिनमें किसी व्यक्ति के विरुद्ध दण्ड प्रक्रिया संहिता के अध्याय VIII के अधीन कार्यवाही की जाती है वह यह अभ्यावेदन कर सकता है कि परिस्थितियां सारवान् रूप से बदल गई हैं और आगे प्रतिप्रेषण अनावश्यक हो गया है । (पैरा 39)

यह कोई उत्तर नहीं है कि पिटीशनर को इस न्यायालय के आदेशों के अधीन नई दिल्ली लाया गया था और इसलिए सिटी मजिस्ट्रेट को लखनऊ में प्रतिप्रेषण आदेश पारित करना पड़ा । जैसा कि पहले ही यह उल्लेख कर चुके हैं कि कोई अभ्यावेदन नहीं किया गया था और न ही प्रत्यर्थियों की ओर से 27 अगस्त, 1970 को किन्हीं निदेशों की तब प्रार्थना की गई जब 1970 का रिट पिटीशन सं० 315 स्थगित किया गया था । 28 अगस्त, 1970 के आदेशों के अधीन उच्चतम न्यायालय ने पिटीशनर को उसकी अपनी अभिरक्षा से मुक्त कर दिया, मूल अभिरक्षा में प्रत्यावर्तित कर दिया और यहां तक कि उसके मामले की सुनवाई की नई तारीख के नियत हो जाने के दौरान उसे लखनऊ ले जाने की भी अनुज्ञा दे दी । उत्तर प्रदेश के सम्बद्ध प्राधिकारियों ने उसे सम्बद्ध मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करने के लिए वापस लखनऊ ले जाने के अवसर का लाभ नहीं उठाया । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि सिटी मजिस्ट्रेट, लखनऊ द्वारा पारित तारीख 28 और 29 अगस्त, 1970 के प्रतिप्रेषण आदेश अवैध हैं । (पैरा 40 और 41)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1969] 1969 का रिट पिटीशन संख्या 171, जिसका विनिश्चय 25 सितम्बर, 1969 को किया गया था : **तलांगडिंगलियाना** बनाम **आसाम राज्य** (Talangdingliana *Vs.* The State of Assam); 25

पैरा

[1967] 1967 दिल्ली लॉ टाइम्स, 126 :

राम ऋषि अनल बनाम **दिल्ली प्रशासन, दिल्ली और अन्य**

(Ram Rishi Anal *Vs*. The Delhi Administration, Delhi and Others) ; 37

[1948] आई० एल० आर० (1948) मद्रास 279 :

एम० आर० वेंकटरमण और अन्य वाला मामला

(*In re* : M. R. Venkataraman and Others) ; 34

[1967] 1967 पंजाब रिकार्ड-जुडीशियल 72 :

क्राउन बनाम **शेरा और अन्य**

(Crown *Vs*. Shera and Others) ; और 33

49 क्रिमिनल लॉ जरनल 41 :

वेंकटरमण वाला मामला

(*In re*. Venkataraman); 5

प्रभेदित निर्णय

[1953] (1953) एस० सी० आर० 652 :

राम नारायण सिंह बनाम **दिल्ली राज्य और अन्य**

(Ram Narayan Singh *Vs*. The State of Delhi and Others) ; 6, 35,37

उलट दिया गया निर्णय

[1867] 2 वेयर्स 209 :

अनानिमस में

(*In* Anonymous). 5

आरम्भिक अधिकारिता : 1970 का रिट पिटीशन संख्या 330.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन वन्दी प्रत्यक्षीकरण (हैबियस कार्पस) की प्रकृति के रिट के लिए फाइल किया गया रिट पिटीशन।

पिटीशनर की ओर से श्री डी० पी० सिंह

प्रत्यर्थी की ओर से कोई नहीं

आदेश

बहुमत से हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि श्री राज नारायण, की अभिरक्षा विधिमान्य है और यह कि वह अपने पिटीशन के आधार पर मुक्त किए जाने के हकदार नहीं हैं। हम अपने कारण बाद में देंगे।

मुख्य न्यायाधिपति हिदायतुल्लाह––

श्री राज नारायण, संसद् सदस्य को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धाराओं 107/117 के अधीन 20 अगस्त, 1970 को गिरफ्तार किया गया था और सिटी मजिस्ट्रेट, लखनऊ द्वारा जारी किए गए वारण्ट के अधीन जेल अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित किया गया था। उसकी मुक्ति के लिए बन्दी प्रत्यक्षीकरण की रिट के लिए एक पिटीशन इस न्यायालय में लम्बित है और तारीख 22 अगस्त, 1970 वाले हमारे आदेशों के अधीन उसे तिहाड़ केन्द्रीय जेल में अन्तरित कर दिया गया है। सिटी मजिस्ट्रेट द्वारा यथा आदिष्ट उसका मूल प्रतिप्रेषण 28 अगस्त, 1970 तक था।

2. 28 अगस्त, 1970 को हमें चार बजे अपराह्न यह सूचना दी गई कि यह प्रतिप्रेषण 28 अगस्त, 1970 की अर्द्धरात्रि को समाप्त हो जाएगा और केन्द्रीय जेल का अधीक्षक श्री राज नारायण को उसके पश्चात् निरुद्ध करने में समर्थ नहीं होगा। अधीक्षक से इस सम्बन्ध में रजिस्ट्री को निम्नलिखित संज्ञापना प्राप्त हुई––

> "**विषय**––उच्चतम न्यायालय में 1970 के रिट पिटीशन संख्या 315 में श्री राज नारायण, संसद् सदस्य का पेश किया जाना।

श्रीमान्,

मुझे यह निवेदन करना है कि श्री राज नारायण, संसद् सदस्य को, बन्दी-प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति के उसके रिट पिटीशन के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय में पेश किए जाने के लिए इस जेल में ज़िला जेल, लखनऊ से अन्तरण किए जाने पर प्राप्त किया गया था। उसे 25, 26 और

27 अगस्त, 1970 को न्यायालय में पेश किया गया था । अब उच्चतम न्यायालय ने तारीख 27 अगस्त, 1970 वाले अपने आदेश द्वारा यह आदेश दिया है कि उसे न्यायालय में पेश नहीं किया जाना है और यह कि उसे दिल्ली में रखा जाए । न्यायालय के आदेशों को नीचे उद्धृत किया जाता है——

> "श्री राज नारायण का पिटीशन कल के लिए सूची में नहीं लगाया जाना है और उसे कल न्यायालय में पेश नहीं किया जाना है । तथापि उन्हें दिल्ली में रखा जाए ।"

> 2. श्री राज नारायण का न्यायिक प्रतिप्रेषण सिटी मजिस्ट्रेट और मजिस्ट्रेट, प्रथम वर्ग, लखनऊ द्वारा 28 अगस्त, 1970 तक मंजूर किया गया है, देखिए——तारीख 21 अगस्त, 1970 वाले आदेश की संलग्न प्रति । दूसरे शब्दों में उनका न्यायिक प्रतिप्रेषण आज समाप्त होगा । अतः आपसे प्रार्थना है कि कृपया यह संज्ञापित करें कि क्या आपके आदेशों के अनुसार श्री राज नारायण को 28 अगस्त, 1970 के पश्चात् दिल्ली जेल में रखा जाना है अथवा उक्त न्यायालय से आगे न्यायिक प्रतिप्रेषण लिया जाना है ।

कृपया चाहा गया स्पष्टीकरण पत्र-वाहक द्वारा आज ही दे दिया जाए ।

भवदीय"

तदुपरि न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश किया——

> "हमारे समक्ष जेल के अधीक्षक द्वारा यह अभ्यावेदन किया गया है कि श्री राज नारायण का प्रतिप्रेषण अर्द्ध-रात्रि को समाप्त होता है और क्योंकि उन्हें दिल्ली में रखे जाने का आदेश दिया गया है अतः हमारे लिए यह कहना आवश्यक है कि उन्हें किस की अभिरक्षा और किस के आदेशों के अधीन निरुद्ध किया जाना है । श्री मधु लिमये के मामले में भी वैसी ही स्थिति तब उत्पन्न हो गई थी जब उनका प्रतिप्रेषण समाप्त हो गया था और वह एक स्वतन्त्र व्यक्ति हो गए थे क्योंकि हम उन्हें मजिस्ट्रेट द्वारा मूलतः नियत की गई कालावधि से आगे

अपने आदेशों के अधीन निरोध में नहीं रख सकते थे । वही स्थिति अब उत्पन्न हुई है और हम केवल यह आदेश कर सकते हैं कि उन्हें उस अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित किया जाए जिससे वह आए थे और यदि इच्छा की जाए तो उन्हें उत्तर प्रदेश ले जाया जाए और इस मामले में नियत की जाने वाली सुनवाई की अगली तारीख को हमारे समक्ष पेश किया जाए ? यदि जेल अधीक्षक को अर्द्ध-रात्रि तक नया प्रतिप्रेषण आदेश प्राप्त नहीं होता तो पिटीशनर को निरुद्ध नहीं किया जाएगा, जैसा कि (निरोध करने के लिए) इस न्यायालय ने आदेश दिया था और उन्हें अर्द्ध-रात्रि को स्वतन्त्र कर दिया जाएगा ।"

3. उसी दिन तिहाड़ केन्द्रीय जेल के अधीक्षक को लखनऊ के जिला मजिस्ट्रेट से एक बेतार संदेश प्राप्त हुआ । इसमें यह कहा गया था––

"बन्दी प्रत्यक्षीकरण (हैबियस कार्पस) पिटीशन संख्या 315/70 तारीख 28 मार्च, 1970 । श्री राज नारायण संसद् सदस्य को तारीख 28 अगस्त, 1970 वाले लखनऊ के सिटी मजिस्ट्रेट के आदेशों के अधीन पहली सितम्बर (1 सितम्बर, 1970) तक अतिरिक्त जेल अभिरक्षा के लिए प्रतिप्रेषित किया जाता है । जेल वारण्ट में नोट किया जाए और उन्हें सूचित किया जाए ।"

अगले दिन उस सन्देश में यह संशोधन किया गया कि एक सितम्बर के स्थान पर दस सितम्बर पढ़ा जाए । लखनऊ के सिटी मजिस्ट्रेट ने तिहाड़ केन्द्रीय जेल के अधीक्षक को निम्नलिखित सन्देश वाला तार भी भेजा––

". . . . . निर्देश बन्दी-प्रत्यक्षीकरण पिटीशन संख्या 315/70 तारीख 28 अगस्त, 1970 टियम (एतद्वत् मुद्रित) अपराह्न श्री राजनारायण संसद् सदस्य को दस सितम्बर, उन्नीस सौ सत्तर तक और जेल अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित किया जाता है । जेल वारण्ट में नोट किया जाए और उन्हें सूचित किया जाए ।"

साथ ही ज़िला मजिस्ट्रेट ने इस न्यायालय को यह सूचना दी कि श्री राज नारायण संसद् सदस्य का, प्रतिप्रेषण सिटी मजिस्ट्रेट ने 10 सितम्बर, 1970 तक बढ़ा दिया है ।

4. श्री राज नारायण ने बन्दी प्रत्यक्षीकरण पिटीशन की प्रकृति का आवेदन यह कथन करते हुए किया कि प्रतिप्रेषण आदेश उसे 29 की सुबह संसूचित किए गए थे और इसलिए 28 की अर्द्ध रात्रि के पश्चात उसका निरोध अवैध था और उसका प्रतिप्रेषण के किसी आदेश से समर्थन नहीं होता था। इसके अतिरिक्त यह कि किसी भी दशा में चूंकि उसे उसकी अनुपस्थिति में प्रतिप्रेषित किया गया था उसका प्रतिप्रेषण अवैध है और उसे मुक्त किया जाना चाहिए। प्रश्न यह है कि क्या 28 अगस्त, 1970 की अर्द्ध रात्रि को श्री राज नारायण की अभिरक्षा अवैध हो गई थी। हमारी राय यह है कि यह अवैध नहीं हुई थी।

5. श्री राज नारायण के काउन्सेल ने **वेंकटरमण वाले मामले**[1] का अवलम्ब लिया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि मजिस्ट्रेट ने किसी कैदी को अपने समक्ष बुलाए बिना और यह पूछे बिना कि क्या वह किसी व्यक्ति से अपना प्रतिनिधित्व कराना चाहता है और यह हेतुक दर्शित करने का अवसर दिए बिना कि उसे आगे प्रतिप्रेषित क्यों न किया जाना चाहिए, प्रतिप्रेषित करने में मजिस्ट्रेट ने अवैधतता की थी। इस निर्णय में पुनः उसी बात का कथन किया गया है जिसे **अनानिमस**[2] में प्रतिवेदित एक पुराने मामले में कहा गया था जिसमें यह विनिर्णय दिया गया था कि जिस प्रकार सुपुर्दगी के लिए कैदी की उपस्थिति अपेक्षित है उसी प्रकार पुनः सुपुर्दगी किए जाने के लिए भी अपेक्षित है। पूर्ववर्ती मामले में कोई विचार-विमर्श नहीं है और वह मजिस्ट्रेट द्वारा किए गए निर्देश पर कथित राय है।

6. **राम नारायण सिंह** बनाम **दिल्ली राज्य और अन्य**[3] में यह विनिर्णय दिया गया था कि स्थगन के लिए लिखित आदेश होना अपेक्षित है और उसी प्रकार प्रतिप्रेषण आदेश के लिए भी लिखित आदेश अपेक्षित है। वह मामला दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 344 के अधीन स्थगन के बारे में था और चूंकि उसमें यह दर्शित करने वाली कोई बात नहीं थी कि मजिस्ट्रेट ने कैदी को अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित करते हुए एक आदेश दिया था, निरोध के बारे में यह अभिनिर्धारित किया गया कि वह अवैध हो गया

---

1 49 क्रिमिनल लॉ जनरल 41.

2 वेयर्स 209.

3 (1953) एस० सी० आर० 652.

था किन्तु उसमें कोई प्रतिप्रेषण आदेश नहीं था । एकमात्र आदेश वारण्ट पर पृष्ठांकन था—'11 मार्च, 1953 तक न्यायिक (एतद्वत् मुद्रित) में प्रतिप्रेषित ।' यह वारण्ट इसके पूर्व पेश नहीं किया गया था और न्यायालय के अभिलेख पर प्रतिप्रेषण आदेश प्रदर्शित करने वाली कोई चीज़ नहीं थी । न्यायालय ने जो कुछ किया था वह मामले को स्थगित करना था । इस न्यायालय ने उस दिन न्यायालय के उठ जाने के पश्चात् पेश किए गए वारण्ट को ध्यान में लेने से इन्कार कर दिया क्योंकि इसे इसके पूर्व पेश नहीं किया गया था और न्यायालय के अभिलेख पर प्रतिप्रेषण दर्शित करने वाला कोई आदेश नहीं था । अतः निरुद्ध व्यक्ति मुक्त कर दिए गए ।

7. इस मामले के तथ्य उद्धृत किए गए मामले से भिन्न हैं । श्री राज नारायण ने ज़मानत नहीं चाही है अथवा अपने काउन्सेल की मार्फत हाज़िर होना नहीं चाहा है । उन्होंने अपने निरोध के सिवाय किसी बात की शिकायत नहीं की है, जिसे उन्होंने तकनीकी कारणवश अवैध बताया है क्योंकि उन्हें मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश नहीं किया गया था । यदि वह ज़मानत चाहते तो हमसे निवेदन कर सकते थे क्योंकि वे हमारी अभिरक्षा में थे । विधि में ऐसी कोई बात नहीं है जो मजिस्ट्रेट के समक्ष उसकी स्वीय उपस्थिति की अपेक्षा करती हो क्योंकि वह पुलिस की प्रेरणा पर प्रतिप्रेषण मंजूर करने से पूर्व मजिस्ट्रेटों के लिए सावधानी का एक नियम है । किन्तु यहां तक कि यदि मजिस्ट्रेट कैदी को अपने समक्ष तब पेश कराना चाहे जब वह उसे आगे अभिरक्षा के लिए पुनः सुपुर्द करें तो कोई मजिस्ट्रेट, परिस्थितियां जिस प्रकार अनुज्ञात करें, केवल उसी प्रकार कार्य कर सकता है । जहां कैदी की अभिरक्षा वरिष्ठ न्यायालय को अन्तरित की जाती है, जैसा कि इस मामले में, तो मजिस्ट्रेट मामले को केवल स्थगित कर सकता है और साथ ही प्रतिप्रेषण की अवधि को बढ़ा सकता है । यह सुनिश्चित करना इस न्यायालय का कर्तव्य है कि इसके द्वारा अभिरक्षा समुचित आदेशों के अधीन जारी रहे और यदि इस न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि कैदी समुचित प्रतिप्रेषण के आदेश के अधीन समुचित अभिरक्षा में है तो कैदी को मुक्त नहीं किया जाएगा । यह न्यायालय निरोध का आदेश नहीं करता और प्रतिप्रेषण नहीं बढ़ा सकता । उसकी यह अभिरक्षा मजिस्ट्रेट द्वारा किए गए प्रतिप्रेषण

आदेश की सहावसानी है। यदि मजिस्ट्रेट प्रतिप्रेषण की कालावधि बढ़ाता है और इस न्यायालय और कैदी को संज्ञापना सहित, कैदी की अव्यवहित अभिरक्षा रखने वाले व्यक्ति को आदेश संसूचित करता है तो उससे इससे अधिक और कुछ प्रत्याशा नहीं की जा सकती। मजिस्ट्रेट के समक्ष कैदी के पेश किए जाने के उद्देश्य का इस न्यायालय के समक्ष उसके पेश किए जाने से कहीं अधिक उत्तर मिल जाता है क्योंकि कैदी के हितों की संरक्षा मजिस्ट्रेट से इस न्यायालय में अन्तरित हो जाती है।

8. ऐसा कोई कारण नहीं है जिससे कि हमें श्री राज नारायण की मुक्ति का आदेश करना चाहिए जब कि हमारा यह समाधान हो गया है कि उन्हें मजिस्ट्रेट द्वारा समुचित प्रतिप्रेषण के आधार पर निरुद्ध किया गया है और हमारे द्वारा मुक्ति को न्यायोचित ठहराने की कोई परिस्थितियां नहीं हैं। मजिस्ट्रेट से संहिता की धारा 344 के अधीन से अधिक कुछ करने की प्रत्याशा करना उससे ऐसी परिस्थितियों में एक असम्भव बात की प्रत्याशा करना होगा और विधि किसी असंम्भावित को अनुध्यात नहीं करती। वस्तुतः, उसी प्रकार न्यायालय मामलों का विचारण करते समय अभियुक्त व्यक्ति की अनुपस्थिति में प्रतिप्रेषण का आदेश करना आवश्यक समझ सकता है, उदाहरणार्थ ऐसी दशा में जब अभियुक्त इतना गम्भीर रूप से रुग्ण है कि विचारण को स्थगित करना होगा और उसे न्यायालय में नहीं लाया जा सकता और ऐसे मामले में अभियुक्त को न्यायालय में पेश किए बिना किया गया आदेश अविधिमान्य नहीं होगा।

9. उन कैदियों को, जिनका विचारण किया जा रहा है, इस न्यायालय के समक्ष आरम्भिक आदेश के आधार पर लाया जाता है और इस न्यायालय की अभिरक्षा में रखा जाता है। यह मजिस्ट्रेट की ओर से अन्तरित अभिरक्षा का मामला है। मजिस्ट्रेट अपने आदेश द्वारा कैदी को हमारी अभिरक्षा से वापस नहीं बुला सकता और उससे केवल यह अपेक्षा की जाती है कि वह मामले को स्थगित करते समय जेल प्राधिकारियों को, कैदी को और इस न्यायालय को यह प्रज्ञापित करे कि मूल प्रतिप्रेषण बढ़ा दिया गया है। ऐसी विशेष परिस्थितियों में यह विधि की अपेक्षाओं का पर्याप्त अनुपालन है।

10. इन्हीं कारणों से हमने श्री राज नारायण के मुख्य पिटीशन के विनिश्चय के लम्बित रहते हुए उनकी वर्तमान अभिरक्षा को समुचित

ठहराया और तुरन्त मुक्ति के लिए उनके आवेदन को खारिज कर दिया ।

न्यायाधिपति वैद्यलिंगम्—

11. हम तारीख 28 अगस्त, 1970 को प्रश्नगत प्रतिप्रेषण आदेश की विधिमान्यता के बारे में विद्वान मुख्य न्यायाधिपति द्वारा अभी सुनाए गए आदेश से सहमत होने में असमर्थ हैं। अब हम अपनी असहमति के कारण देंगे।

12. बन्दी प्रत्यक्षीकरण के इस पिटीशन में पिटीशनर ने इस आधार पर तुरन्त मुक्ति की प्रार्थना की है कि सिटी मजिस्ट्रेट, लखनऊ द्वारा पारित तारीख 28 अगस्त, 1970 वाला प्रतिप्रेषण आदेश अविधिमान्य है और 28 अगस्त, 1970 की अर्द्धरात्रि के पश्चात् उसका निरोध अवैध है । इसके अतिरिक्त उसने अपने निरोध के बारे में इस आधार पर आपत्ति की है कि यह 1970 के रिट पिटीशन संख्या 315 में 28 अगस्त, 1970 को इस न्यायालय द्वारा दिए गए निदेशों के प्रतिकूल है ।

13. प्रस्तुत पिटीशन के फाइल किए जाने की परिस्थितियों तक का यहां संक्षेप में कथन कर दें: पिटीशनर ने 20 अगस्त, 1970 को अपनी गिरफ्तारी को और जिला जेल, लखनऊ में अपने निरोध को चुनौती देते हुए बन्दी प्रत्यक्षीकरण के लिए 1970 का रिट पिटीशन संख्या 315 पहले ही फाइल कर दिया है । उसने अपनी गिरफ्तारी और निरोध की वैधता के विरुद्ध बहुत से आधार दिए हैं और तुरन्त मक्त किए जाने की प्रार्थना की है । उसने दण्ड प्रक्रिया संहिता की कुछ धाराओं को यह कहते हुए उच्छेदित करने की भी प्रार्थना की है कि वे संविधान का अतिक्रमण करती हैं । लखनऊ के सिटी मजिस्ट्रेट ने अपने प्रति शपथपत्र में यह कथन किया है कि उसने पिटीशनर की गिरफ्तारी के लिये वारण्ट दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 107 और 112 के अधीन जारी किया था और यह कि जब पिटीशनर को 20 अगस्त, 1970 को पूर्वाह्न 9 बजे उसके समक्ष पेश किया गया तो उसने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 112 के अधीन सूचना की अन्तर्वस्तुएं पिटीशनर को मौखिक रूप से स्पष्ट कीं, जिसकी एक प्रति को उस पर पहले ही तामील की जा चुकी थी; और यह कि पिटीशनर ने उसका एक लम्बा जवाब फाइल किया ।

इसके अतिरिक्त सिटी मजिस्ट्रेट ने यह कथन किया कि चूंकि पिटीशनर ने जांच के लंवित रहने के दौरान जमानत पर मुक्त किये जाने के लिये कोई आवेदन नहीं दिया अतः उसे जेल में प्रतिप्रेषित कर दिया गया। सिटी मजिस्ट्रेट ने यह भी कहा है कि पिटीशनर के विरुद्ध शुरू की गई कार्यवाहियां वैध और विधिमान्य हैं और पिटीशनर ने दण्ड प्रक्रिया संहिता के जिन उपबंधों को चुनौती दी है वे भी विधिमान्य हैं। इस रिट पिटीशन में पक्षकारों द्वारा उठाई गई दलीलों का इस न्यायालय द्वारा न्यायनिर्णयन किया जाना है। किन्तु यह कथन कर दें कि 20 अगस्त, 1970 को पारित प्रतिप्रेषण आदेश 28 अगस्त, 1970 तक प्रभावी था।

14. 1970 के रिट पिटीशन सं० 315 में पिटीशनर ने उत्तर प्रदेश राज्य, जिला मजिस्ट्रेट, लखनऊ, अधीक्षक जिला जेल, लखनऊ और भारत संघ को प्रत्यर्थियों के रूप में पक्षकार बनाया। 21 अगस्त, 1970 को जब उक्त रिट पिटीशन आरंभिक सुनवाई के लिये प्रस्तुत किया गया तो इस न्यायालय ने "आरम्भिक आदेश जारी करने का निदेश दिया जो 25 अगस्त, 1970 को वापस आना था।" और इसके अतिरिक्त यह आदेश किया कि पिटीशनर को उस दिन न्यायालय के समक्ष पेश किया जाना था। तदनुसार पिटीशनर को जिला जेल, लखनऊ से केन्द्रीय जेल, नई दिल्ली में इसलिये अन्तरित कर दिया गया जिससे कि उसे इस न्यायालय के समक्ष पेश किया जा सके। उसे 25, 26 और 27 अगस्त, 1970 को इस न्यायालय में पेश किया गया। 27 अगस्त, 1970 को इस न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया—

> "श्री राज नारायण का पिटीशन कल सूची में नहीं लगाया जाना है और उसे कल न्यायालय में पेश नहीं किया जाना है। किन्तु उसे दिल्ली में रखा जाये।"

15. यद्यपि उत्तर प्रदेश राज्य काउन्सेल की मार्फत 27 अगस्त, 1970 को हमारे समक्ष तब हाजिर हुआ जब उपर्युक्त आदेश पारित किया गया था किन्तु हमारे ध्यान में यह सूचना नहीं लाई गई कि 20 अगस्त, 1970 को सिटी मजिस्ट्रेट, लखनऊ द्वारा पारित प्रतिप्रेषण का आदेश 28 अगस्त, 1970 की अर्धरात्रि को समाप्त हो रहा था और न ही उस संबंध में किसी भी समय इस न्यायालय से कोई निदेश चाहे गए। केवल 28 अगस्त, 1970 को अपराह्न 4 बजे ही जब न्यायालय

उस दिन के लिये उठने ही वाला था कि केन्द्रीय जेल, नई दिल्ली के अधीक्षक का उसी तारीख का एक पत्र, जिसे इस न्यायालय के सहायक रजिस्ट्रार ने प्राप्त किया था, हमारे ध्यान में लाया गया, जिसमें पिटीशनर के निरोध के बारे में निदेश चाहे गये थे। उस पत्र को विद्वान मुख्य न्यायाधिपति ने अपने आदेश में उपवर्णित किया है। उस पत्र से यह बात स्पष्ट है कि सिटी मजिस्ट्रेट, लखनऊ ने पिटीशनर के न्यायिक प्रतिप्रेषण का जो आदेश किया था वह उसी दिन समाप्त होना था और इस बाबत आदेशों की प्रार्थना की गई थी कि क्या पिटीशनर को इस न्यायालय के आदेशों के अधीन आगे निरुद्ध किया जाना है अथवा क्या इसके आगे उसका न्यायिक प्रतिप्रेषण सिटी मजिस्ट्रेट, लखनऊ से प्राप्त किया जाना है।

16. जब कोई निरोधाधीन व्यक्ति यह व्यथा प्रस्तुत करता है कि उसका निरोध अवैध और अविधिमान्य है और बन्दी प्रत्यक्षीकरण के रिट की प्रार्थना करता है और इस न्यायालय के समक्ष पेश किया जाता है तो वह कैदी सीधे इस न्यायालय की अभिरक्षा में आ जाता है। किन्तु यह न्यायालय ऐसे आदेश पारित नहीं करेगा जिनका प्रभाव कैदी को पहले से ही आदिष्ट निरोध की कालावधि से आगे निरुद्ध किया जाना हो और जिस आदेश के बारे में शिकायत की गई है। किसी समुचित मामले में ऐसे निरोध आदेश के प्रवर्तन के दौरान जिसे चुनौती दी गई है, यह न्यायालय अपने द्वारा उसकी व्यथा के न्यायनिर्णीत किये जाने के लंबित रहते हुए उस कैदी को जमानत पर अथवा अन्यथा, सशर्त अथवा बिना किसी शर्त के मुक्त कर सकेगा।

17. केन्द्रीय जेल, नई दिल्ली के अधीक्षक के 28 अगस्त, 1970 के पत्र पर इस न्यायालय ने उसी दिन एक आदेश किया जिसे विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति के आदेश में पूर्णतः उपवर्णित किया गया है। उस आदेश से निम्नलिखित मुद्दे उत्पन्न होते हैं —

(i) श्री राज नारायण को उस अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित किया गया था जिससे वह सम्बद्ध थे, अर्थात्, उत्तर प्रदेश के प्राधिकारी;

(ii) उत्तर प्रदेश के प्राधिकारी पिटीशनर को उसके रिट पिटीशन की सुनवाई की अगली तारीख के नियत किये जाने के लंबित रहते हुए उसे लखनऊ ले जा सकते थे;

1970(9) eILR(PAT) SC 22

(iii) यदि केन्द्रीय जेल, नई दिल्ली का अधीक्षक 28 अगस्त, 1970 की अर्धरात्रि तक प्रतिप्रेषण का नया आदेश प्राप्त नहीं करता तो पिटीशनर को निरुद्ध, जैसा कि इस न्यायालय ने आदेश दिया है, नहीं किया जाना चाहिये और यह कि उसे अर्धरात्रि को मुक्त कर देना चाहिये।

18. इस प्रक्रम पर यह कथन कर दें कि यदि 1970 के रिट पिटीशन संख्या 315 के प्रत्यर्थियों ने, जिनका प्रतिनिधित्व काउन्सेल ने किया है, 27 अगस्त 1970 को (जब इस रिट पिटीशन को पश्चात्वर्ती तारीख के लिये स्थगित किया गया) हमारे ध्यान में यह बात लाई होती कि सिटी मजिस्ट्रेट का प्रतिप्रेषण आदेश 28 अगस्त, 1970 को समाप्त हो रहा था और निदेशों की प्रार्थना की होती तो इस न्यायालय ने उसी तारीख को उस आदेश के समान आदेश पारित कर दिया होता जो वस्तुतः 28 अगस्त, 1970 की शाम को पारित किया गया। उस दशा में प्रत्यर्थियों के पास पिटीशनर को प्रतिप्रेषण का अतिरिक्त आदेश प्राप्त करने हेतु, यदि वह इसे आवश्यक समझता, सिटी मजिस्ट्रेट के समक्ष उसे पेश करने के लिय लखनऊ ले जाने का पर्याप्त अवसर रहा होता।

19. किन्तु स्थिति यह है कि पिटीशनर को न तो लखनऊ ले जाया गया और न ही सिटी मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया। इसके बजाय उसे केन्द्रीय जेल, नई दिल्ली में रखा गया। सिटी मजिस्ट्रेट, लखनऊ ने दो आदेश पारित किए, अर्थात एक 28 अगस्त, 1970 को और दूसरा 29 अगस्त, 1970 को। दोनों ही आदेशों को विद्वान मुख्य न्यायाधिपति के आदेश में उद्धृत किया गया है। प्रथम आदेश द्वारा जिसके बारे में यह कथन किया गया है कि वह बेतार संदेश द्वारा संसूचित किया गया था, पिटीशनर को 1 सितम्बर, 1970 तक अतिरिक्त जेल अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित कर दिया गया दूसरे आदेश द्वारा जो तार द्वारा संसूचित किया गया था उसे 10 सितम्बर, 1970 तक अतिरिक्त जेल अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित कर दिया गया।

20. पिटीशनर ने प्रस्तुत रिट पिटीशन में इस आधार पर कि उसका अतिरिक्त निरोध अवैध है, अपनी मुक्ति का निदेश देने वाले बन्दी प्रत्यक्षीकरण का रिट जारी करने की प्रार्थना की है। उसने 28 अगस्त, 1970 की अर्धरात्रि के पश्चात् अपने निरोध को अवैध बताते

हुए और इस न्यायालय द्वारा दिये गये निदशों के प्रतिकूल बताते हुए आपत्ति की है। उसने यह कथन किया है कि 28 अगस्त, 1970 को अर्धरात्रि से पूर्व उसे प्रतिप्रेषण के कोई आदेश संसूचित नहीं किये गये थे और यह कि दो प्रतिप्रेषण आदेश एक दूसरे से बिल्कुल असंगत हैं। प्रतिप्रेषण आदेशों की बाबत चुनौती का अधिक गम्भीर आधार यह है कि वे अवैध हैं क्योंकि उन्हें सिटी मजिस्ट्रेट ने, उसे (पिटीशनर) अपने समक्ष पेश किये बिना और उस (पिटीशनर) की अनुपस्थिति में पारित किया है।

21. 31 अगस्त, 1970 को इस न्यायालय ने केन्द्रीय जेल, नई दिल्ली के अधीक्षक को एक सूचना जारी की जिसमें 1 सितम्बर, 1970 को न्यायालय के समक्ष वह वारण्ट पेश करने के लिये कहा गया था जिनके अधीन "श्री राज नारायण को सम्प्रति निरुद्ध किया गया है"। 1 सितम्बर, 1970 को जेल प्राधिकारियों की ओर से 28 अगस्त, 1970 को प्राप्त बेतार संदेश और 29 अगस्त, 1970 को प्राप्त तार हमारे ध्यान में लाये गये।

22. जैसे ही हम यह अभिनिर्धारित करना चाहते थे कि प्रतिप्रेषण आदेश विधि के अनुसार पारित नहीं किए गए थे और परिणाम स्वरूप पिटीशनर का अतिरिक्त निरोध अवैध है, उसी दिन इस न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित कर दिया—

> "बहुमत से हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि श्री राज नारायण की अभिरक्षा विधिमान्य है और यह कि वह अपने पिटीशन के आधार पर मुक्त किए जाने के हकदार नहीं हैं। हम अपने कारण बाद में देंगे।"

23. पिटीशनर की इस व्यथा में कि 28 और 29 अगस्त, 1970 को सिटी मजिस्ट्रेट द्वारा पारित दो आदेश असंगत हैं, पर्याप्त बल है। यह अजीब बात है कि 1 सितम्बर, 1970 तक पिटीशनर की अभिरक्षा को बढ़ाने वाले प्रतिप्रेषण आदेश के कुछ ही घण्टों के पश्चात् एक अन्य आदेश द्वारा इसे 10 सितम्बर, 1970 की अतिरिक्त कालावधि तक बढ़ा दिया गया। यह दर्शित करने वाली कोई बात नहीं है कि यह क्यों आवश्यक हुआ। प्रथम दृष्टया यह प्रतीत होता है कि मजिस्ट्रेट ने

इस प्रश्न पर न्यायिक रूप से विचार नहीं किया था कि पिटीशनर की अभिरक्षा कितने समय तक के लिये बढ़ाई जानी चाहिये। प्रथम दृष्टया यह भी दर्शित होगा कि मजिस्ट्रेट ने प्रतिप्रेषण का आदेश उस कालावधि पर विचार किये बिना जिसके लिये प्रतिप्रेषण आदेश प्रभावी होंगे प्रतिप्रेषण आदेश यंत्रवत् रीति में पारित किया। इससे निश्चित रूप से यह पता चलता है कि ऐसे मामलों में भी जिनमें किसी नागरिक की दैहिक स्वाधीनता अन्तर्वलित है न्यायिक रूप से विचार नहीं किया जाता।

24. किन्तु हम केवल उपर्युक्त परिस्थिति पर ही अपना विनिश्चय आधारित करने के लिये तैयार नहीं हैं। पिटीशनर ने अपने पिटीशन में इसके अतिरिक्त यह कथन किया है कि उसे लखनऊ के सिटी मजिस्ट्रेट द्वारा पारित प्रतिप्रेषण के आदेश की बाबत प्रज्ञापना केवल 29 अगस्त, 1970 को प्रातःकाल ही मिली। यदि सिटी मजिस्ट्रेट विधिक दृष्टि में, 28 अगस्त, 1970 की प्रतिप्रेषण का आदेश, निरुद्ध व्यक्ति को अपने समक्ष पेश किये बिना, पारित कर सकता था तो केवल यह तथ्य कि पिटीशनर को 29 अगस्त, 1970 की सुबह यह बात बताई गई, निरोध आदेश को अविधिमान्य नहीं बना सकता। किन्तु हम पिटीशनर की यह दलील मान्य ठहराते हैं कि सिटी मजिस्ट्रेट को, निरोधाधीन व्यक्ति को अपने समक्ष पेश किये बिना प्रतिप्रेषण का आदेश पारित करने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं थी और इस प्रकार 28 अगस्त, 1970 को पारित आदेश, उस समय के बावजूद जब वह पिटीशनर को बताया गया, अवैध है।

25. अब पिटीशनर को, मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किये बिना मजिस्ट्रेट द्वारा निरोध में प्रतिप्रेषित करने वाले आदेश की विधिमान्यता के प्रश्न पर विचार करते समय दण्ड प्रक्रिया संहिता के कतिपय उपबन्धों के प्रति निर्देश करना आवश्यक है। ऐसा एक प्रश्न **तलागंडिगलियाना** बनाम **आसाम राज्य**[1] में इस न्यायालय के समक्ष विचाराधीन था किन्तु उसे विनिश्चित नहीं किया गया था क्योंकि उस मामले में ऐसा करना आवश्यक नहीं था।

26. किसी जांच अथवा विचारण के प्रारम्भ होने से पूर्व किसी व्यक्ति को कितनी कालावधि के लिये अभिरक्षा में निरुद्ध किया जा सकता

---

[1] 1969 का रिट पिटीशन संख्या 171, जिसका विनिश्चय 25 सितम्बर, 1969 को किया गया था।

है यह बात दण्ड प्रक्रिया संहिता में अनुध्यात की गई है और उसे मोटे तौर पर दो प्रक्रमों में विभाजित किया गया है। प्रथम प्रक्रम 24 घण्टे की अधिकतम कालावधि है। (देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 61) इस कालावधि के लिये पुलिस को अन्वेषण के दौरान किसी व्यक्ति को निरुद्ध करने की शक्ति प्राप्त है। किन्तु संविधान के अनुच्छेद 22(2) के अधीन हर एक व्यक्ति को, जिसे गिरफ्तार किया जाता है और अभिरक्षा में निरुद्ध किया जाता है, ऐसी गिरफ्तारी के 24 घण्टे की कालावधि के भीतर, उसमें उपवर्णित समय को छोड़ते हुए निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जायेगा, तथा ऐसा कोई व्यक्ति उक्त कालावधि से आगे मजिस्ट्रेट के प्राधिकार के बिना हवालात (अभिरक्षा) में निरुद्ध नहीं रखा जायेगा। यदि 24 घण्टे के भीतर अन्वेषण पूरा नहीं किया जा सकता तो गिरफ्तार और अभिरक्षा में निरुद्ध व्यक्ति को निकटतम मजिस्ट्रेट के पास भेजा जाना चाहिये जैसा कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(1) में उपबन्ध किया गया है। धारा 167(2) के अधीन जब किसी अभियुक्त व्यक्ति को इस प्रकार भेजा जाता है तो मजिस्ट्रेट, चाहे उसे अभियुक्त व्यक्ति का विचारण करने की अधिकारिता प्राप्त हो या न प्राप्त हो, अभियुक्त व्यक्ति का ऐसी अभिरक्षा में निरोध प्राधिकृत कर सकेगा जैसा कि वह ठीक समझे जो कालावधि कुल मिलाकर 15 दिन से अधिक नहीं होगी। 15 दिन के निरोध के लिये यह दूसरा प्रक्रम है। यदि उस मजिस्ट्रेट को, जिसके पास अभियुक्त को भेजा गया है, मामले का विचारण करने अथवा विचारण के लिये सुपुर्द करने की अधिकारिता नहीं है, और यदि वह अतिरिक्त निरोध अनावश्यक समझता है, तो मजिस्ट्रेट को उस अभियुक्त को ऐसी अधिकारिता रखने वाले मजिस्ट्रेट के पास भेजना होता है। धारा 167(3) के अधीन पुलिस की अभिरक्षा में निरोध प्राधिकृत करने वाला मजिस्ट्रेट ऐसा करने के लिये अपने कारणों को अभिलिखित करने के लिये आबद्ध है।

27. किन्तु धारा 167(2) में ध्यान देने वाला तथ्य यह है कि उसे अभियुक्त को, जिस पर यह संदेह है अथवा जिसके बारे में यह अभिकथन किया गया है कि उसने अपराध किया है और जिसका किसी न्यायालय द्वारा विचारण किया जाना है, निकटतम मजिस्ट्रेट के पास

भेजना होता है चाहे उसे मामले का विचारण करने की अधिकारिता हो या न हो। अन्वेषण पूरा करने में पुलिस को समर्थ बनाने के प्रयोजनार्थ उस मजिस्ट्रेट को, जिसके समक्ष अभियुक्त पेश किया जाना है, उसमें वर्णित अधिकतम कालावधि के लिये अभियुक्त का निरोध प्राधिकृत करने की शक्ति है। यदि पूर्वोक्त मजिस्ट्रेट आगे निरोध आवश्यक समझता है, तो अभियुक्त को अधिकारिता रखने वाले मजिस्ट्रेट के पास भेजना होगा। इस उपधारा में निर्दिष्ट दोनों मजिस्ट्रेटों के समक्ष अभियुक्त का पेश किया जाना अनिवार्य है और यही स्थिति उस व्यक्ति की बाबत भी है जिसके विरुद्ध यह अभिकथन है कि उसने अपराध किया है।

28. यह हो सकता है कि 167(2) के अधीन आदिष्ट 15 दिन का निरोध अन्वेषण को पूरा करने के लिये पर्याप्त न हो। विधानमण्डल यह अनुध्यात नहीं कर सकता था कि ऐसी परिस्थितियों के अधीन गिरफ्तार व्यक्ति को छोड़ दिया जाना चाहिये। अतः इसने समुचित मामलों में गिरफ्तार किये गये व्यक्तियों का निरोध 15 दिन के पश्चात् जारी रखने के लिये उपबन्ध बनाये होते और दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 344 के उपबन्धों को छोड़ते हुए अतिरिक्त प्रतिप्रेषण अनुज्ञात करने वाले कोई उपबन्ध नहीं हैं। हम इस तथ्य के प्रति पहले ही निर्देश कर चुके हैं कि 1970 के रिट पिटीशन संख्या 315 में सिटी मजिस्ट्रेट ने अपने प्रति-शपथपत्र में यह कथन किया है कि पिटीशनर ने जांच के लंबित रहने के दौरान किसी जमानत की प्रस्थापना नहीं की जिससे मामले की धारा 344 पूर्ण रूप से लागू होती है। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 170 अभिरक्षा के अधीन ऐसे अभियुक्त के प्रति निर्देश करती है जिसे ऐसे मजिस्ट्रेट के पास भेजा जा रहा हो जो पुलिस रिपोर्ट के आधार पर अपराध का संज्ञान करने के लिये सशक्त है। यह धारा भी अभियुक्त को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किये जाने का आग्रह करती है।

29. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 344 के अधीन प्रतिप्रेषण का दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन प्रतिप्रेषण से प्रभेद करना होगा। धारा 344, धारा 167 की अपेक्षा अधिक सामान्य है। किन्तु स्वयं धारा 344 में उस उपबन्ध के अधीन प्रतिप्रेषण का आदेश पारित करने की सीमायें हैं। धारा 344 उसमें उपदर्शित परिस्थितियों के अधीन और रीति में न्यायालय की जांच अथवा विचारण को मुल्तवी

अथवा स्थगित करने की शक्ति देती है। धारा 344 के प्रथम परन्तुक में यह कथन है कि कोई भी मजिस्ट्रेट किसी अभियुक्त व्यक्ति को इस धारा के अधीन एक समय में 15 दिन से अधिक की अवधि के लिये अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित न करेगा। अभियुक्त जांच अथवा विचारण में भाग लेने का हकदार है और वह सम्बद्ध न्यायालय के समक्ष हाजिर होगा और सम्बद्ध न्यायालय अथवा मजिस्ट्रेट द्वारा प्रथम परन्तुक के अधीन प्रतिप्रेषण का आदेश उसकी उपस्थिति में ही किया जायेगा। हमारी यह राय है कि चूंकि अभियुक्त मजिस्ट्रेट अथवा न्यायालय के समक्ष जांच अथवा विचारण के समय उपस्थित है अतः धारा 344 में यह विवक्षित है कि प्रथम परन्तुक के अधीन प्रतिप्रेषण का आदेश उसकी उपस्थिति में किया जाना है।

30. उस विषय पर दूसरे पहलू से भी विचार किया जा सकता है। हम पहले ही यह कथन कर चुके हैं कि ऐसे अभियुक्त की बाबत भी जिसके बारे में यह अभिकथन है कि उसने अपराध किया है और जिस अपराध के बारे में पुलिस द्वारा अन्वेषण किया जा रहा है, दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) में वर्णित मजिस्ट्रेट के समक्ष अभियुक्त का पेश किया जाना दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 61 में निर्दिष्ट 24 घण्टे की कालावधि से आगे, अभियुक्त को निरुद्ध करने हेतु पुलिस द्वारा आवश्यक आदेश अभिप्राप्त करने के प्रयोजनार्थ अत्यन्त आवश्यक है। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 344 के अधीन, जो ऐसे अपराध की बाबत जांच अथवा विचारण के बारे में है जिसके बारे में यह अभिकथन किया गया है कि वह अभियुक्त ने किया है, परन्तुक के अधीन प्रतिप्रेषण का आदेश अभियुक्त की उपस्थिति में पारित किया जाना है। इस मामले में सिटी मजिस्ट्रेट द्वारा 1970 के रिट पिटीशन संख्या 315 में अपने प्रति-शपथपत्र में किये गये प्रकथनों के अनुसार ही पिटीशनर को उसके द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 107 और 112 के अधीन जारी किये गये वारण्ट के आधार पर गिरफ्तार किया गया था और यह कि पिटीशनर ने जांच के लंबित रहते हुए जमानत पर छोड़े जाने की प्रस्थापना नहीं की थी। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 107 को पढ़ने से यह स्पष्टतः दर्शित हो जाता है कि पिटीशनर के संबंध में सिटी मजिस्ट्रेट द्वारा निर्दिष्ट जांच ऐसे अपराध की बाबत नहीं है जिसके

1970(9) eILR(PAT) SC 22

बारे में यह अभिकथन हो कि वह पहले ही किया जा चुका है बल्कि केवल यह विनिश्चित करने के प्रयोजनार्थ है कि क्या उसमें निर्दिष्ट अपराध के अन्वेषण के लिये कार्यवाही की जानी है। जब किसी ऐसे अभियुक्त को जिसके बारे में यह अभिकथन है कि उसने अपराध किया है मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाना हो, तो हमारी यह राय है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 344 के अधीन प्रतिप्रेषण का आदेश पारित करते समय यह बात तर्कसंगत है कि जिस व्यक्ति ने कोई अपराध नहीं किया है बल्कि जिसके विरुद्ध दण्ड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 8 के अधीन कार्यवाही चाही गई है और जिसके निरुद्ध किये जाने की प्रस्थापना की गई है, वह उस समय न्यायालय के समक्ष होना चाहिये जब पश्चातकथित दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 344 के अधीन प्रतिप्रेषण का आदेश पारित करे।

31. अब हम इस पहलू पर निर्णयज विधि के प्रति निर्देश करेंगे। 1867, 2 वैयर्स 409 में मद्रास उच्च न्यायालय ने मजिस्ट्रेट द्वारा किए गए इस निर्देश का उत्तर दिया कि क्या किसी व्यक्ति को नये प्रतिप्रेषण के हर एक अवसर पर मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाना चाहिए। रिपोर्ट में पक्षकारों के नाम नहीं दिए गए हैं। उच्च न्यायालय के तारीख 10 जून, 1967 वाले निर्णय में निम्नलिखित कथन किया गया है—

> "उच्च न्यायालय यह मत अभिव्यक्त करता है कि प्रतिप्रेषित करना अभिरक्षा में पुनः सुपुर्द करना है और यह कि मजिस्ट्रेट द्वारा सुपुर्दगी कैदी के हाजिर होने की अपेक्षा करती है, कैदी की पुनः सुपुर्दगी भी उस हाजिरी की अपेक्षा करती है।"

32. यह विनिश्चय उस समय यथा विद्यमान दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 344 के अधीन दिया गया था।

33. **क्राउन बनाम शेरा और अन्य**[1] में यह अभिनिर्धारित किया गया कि पुलिस के आवेदन पर किसी व्यक्ति को प्रतिप्रेषित करना उस दशा में अवैध है जब कैदी को न्यायालय में पेश न किया जाए।

34. **एम० आर० वेंकटरमण और अन्य**[2] वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय के खण्ड न्यायपीठ ने मजिस्ट्रेट द्वारा, कैदियों को

---

[1] 1967 पंजाब रिकार्ड जुडिशियल 72.

[2] आई० एल० आर० (1948) मद्रास 279.

उसके समक्ष पेश किए बिना, दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 और 344 के अधीन पारित प्रतिप्रेषण आदेश की वैधता पर विचार किया। इस प्रश्न पर विचार करते हुए उच्च न्यायालय ने पृष्ठ 281 पर निम्नलिखित मत व्यक्त किया—

"....यह निश्चित प्रतीत होता है कि मजिस्ट्रेट ने कैदियों को अपने समक्ष पेश किए बिना और उनसे यह पूछे बिना कि क्या वे अपने मामले में किसी के द्वारा अपना प्रतिनिधित्व कराना चाहते हैं और उन्हें यह हेतुक दर्शित करने का अवसर दिए बिना कि उनका और आगे प्रतिप्रेषण क्यों न किया जाए, प्रतिप्रेषण का आदेश जारी करने में अवैध कार्य किया है। हम यह समझते हैं कि अधीनस्थ मजिस्ट्रेट ने यह आदेश भूल से जारी किया और जैसा कि उसने बाद में कहा है इसलिए क्योंकि कैदी त्रिचनापल्ली में थे और उसे पर्याप्त सूचना नहीं मिली कि अतिरिक्त प्रतिप्रेषण के लिए प्रार्थना की जाएगी। किन्तु यह भी हो तो भी हम पिटीशनरों के विद्वान् काउन्सेल से इस बाबत सहमत हैं कि दण्ड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों को भंग करते हुए अवैध कार्य किया गया था और हम यह समझते हैं कि हमारा आदेश मजिस्ट्रेट के लिए इस अवैधता को न दोहराने के लिए चेतावनी का काम देगा।"

35. **राम नारायण सिंह** बनाम **दिल्ली राज्य और अन्य**[1] में इस न्यायालय ने एक अभियुक्त के निरोध की विधिमान्यता पर विचार किया। प्रारंभ में ही हम यह कथन कर दें कि उस विनिश्चय में इस न्यायालय ने ऐसे मामले पर विचार किया था जिसमें अभियुक्त को अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित करने वाला मजिस्ट्रेट का आदेश इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया था। अतः तथ्यों के आधार पर उस मामले का एक भिन्न आधार है किन्तु हमारी यह राय है कि उस विनिश्चय में अधिकथित सिद्धांत प्रासंगिक है। पृष्ठ 654 पर इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया—

"इस न्यायालय ने इसके पूर्व बहुधा यह बात दोहराई है कि उन व्यक्तियों को जो यह महसूस करते हैं कि अपने कर्त्तव्यों

[1] (1953) एस० सी० आर० 652.

के निर्वहन में उनके लिए अन्य व्यक्तियों की दैहिक स्वाधीनता से वंचित करना अपेक्षित है उन्हें यथार्थ रूप से और अतिसावधानी से विधि के प्ररूपों और नियमों का पालन करना चाहिए।"

36. यह विदित होगा कि इस न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया है कि जब किसी व्यक्ति की दैहिक स्वाधीनता को निर्बन्धित अथवा सीमित किया जाता है तो विधि के नियमों और प्ररूपों का अतिसावधानी से पालन किया जाना चाहिए।

37. हाल ही में **राम ऋषि अनल** बनाम **दिल्ली प्रशासन, दिल्ली और अन्य**[1] में प्रतिवेदित विनिश्चय में दिल्ली उच्च न्यायालय ने मजिस्ट्रेटों द्वारा पारित ऐसे प्रतिप्रेषण आदेश की वैधता पर विचार किया जो अभियुक्तों को उनके समक्ष पेश किए बिना पारित किए गए थे। उस निर्णय में कतिपय अन्य अवैधताओं के प्रति संकेत किया गया था। उस विनिश्चय में विद्वान मुख्य न्यायमूर्ति ने यह अभिनिर्धारित किया कि अभियुक्त की अनुपस्थिति में प्रतिप्रेषण आदेश पारित करना अवैध है। दिल्ली उच्च न्यायालय के निर्णय में **राम नारायण सिंह** बनाम **दिल्ली राज्य और अन्य**[2] में इस न्यायालय के विनिश्चय के सिवाय हमारे द्वारा इसके पूर्व उद्धृत विनिश्चय के प्रति कोई निर्देश नहीं है।

38. ऊपर निर्दिष्ट इस न्यायालय के विनिश्चय से यह बात स्पष्ट है कि प्रजा की स्वाधीनता को सीमित करने वाले प्राधिकारियों को विधि के प्ररूपों और नियमों का यथार्थ रूप से और अतिसावधानीपूर्वक पालन करना चाहिये। हमारे द्वारा निर्दिष्ट दण्ड प्रक्रिया संहिता के बहुत से उपबंध और ऊपर उद्धृत विनिश्चयों से भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि जब प्रतिप्रेषण का आदेश पारित किया जाए उस समय अभियुक्त मजिस्ट्रेट अथवा न्यायालय के समक्ष हाजिर होना चाहिये। वस्तुतः हमारे द्वारा उद्धृत विनिश्चय स्पष्ट रूप से यह अधिकथित करते हैं कि अभियुक्त के पेश किये बिना पारित किया गया प्रतिप्रेषण आदेश अवैध है। हम उन विनिश्चयों से सहमत हैं।

39. यह बात तर्कसंगत है कि प्रतिप्रेषण का आदेश अभियुक्त की उपस्थिति में पारित किया जाएगा। अन्यथा स्थिति यह होगी कि मजिस्ट्रेट

[1] 1967 दिल्ली लॉ टाइम्स 126.

[2] (1953) एस० सी० आर० 652.

अथवा न्यायालय अभियुक्त की पर्याप्त लम्बे समय तक सुनवाई किये बिना प्रतिप्रेषण का आदेश यंत्रवत् पारित करेगा। यदि अभियुक्त प्रतिप्रेषण का आदेश पारित किये जाने के समय मजिस्ट्रेट के समक्ष है तो वह यह अभ्यावेदन कर सकता है कि कोई प्रतिप्रेषण आदेश पारित नहीं किया जाना चाहिये और अतिरिक्त प्रतिप्रेषण के लिये किसी प्रस्ताव का भी विरोध कर सकता है। उदाहरणार्थ वह मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा लगाई जा रही असाधारण विलम्ब का अवलम्ब ले सकता है और न्यायालय का यह समाधान करने का प्रयत्न कर सकता है कि अतिरिक्त प्रतिप्रेषण मंजूर नहीं किया जाना चाहिये। पुनः यह सम्भव है कि किसी अभियुक्त ने पूर्ववर्ती अवसर पर अपने को मुक्त कराने के लिये बंधपत्र निष्पादित करने से इंकार किया हो किन्तु बाद में जब अतिरिक्त प्रतिप्रेषण पर विचार किया जा रहा हो तो अभियुक्त ने स्थिति पर पुनः विचार किया हो और वह बंधपत्र निष्पादित करने के लिये रजामंद हो सकता है, जिस दशा में प्रतिप्रेषण आदेश बिल्कुल अनावश्यक होगा। हमारी यह राय है कि यह तथ्य कि सम्बद्ध व्यक्ति जमानत पर मुक्त किये जाने की वांछा नहीं करता अथवा यह कि वह मजिस्ट्रेट को लिखित अभ्यावेदन कर सकता है, इस प्रश्न से असम्बद्ध है। उदाहरणार्थ ऐसे मामलों में जिनमें किसी व्यक्ति के विरुद्ध दण्ड प्रक्रिया संहिता के अध्याय VIII के अधीन कार्यवाही की जाती है वह यह अभ्यावेदन कर सकता है कि परिस्थितियां सारवान् रूप से बदल गई हैं और आगे प्रतिप्रेषण अनावश्यक हो गया है। मजिस्ट्रेट के समक्ष सम्बद्ध व्यक्ति को पेश न करके उसे ऐसे अभ्यावेदन के अवसर से वंचित किया जाता है। चूंकि मजिस्ट्रेट को न्यायिक रूप से विचार करना होता है अतः जब निरुद्ध व्यक्ति को उसके समक्ष पेश किया जाता है तो वह सभी सुसंगत परिस्थितियों पर ध्यान दे सकता है और यह विनिश्चय कर सकता है कि क्या अतिरिक्त प्रतिप्रेषण आवश्यक है। यदि अभियुक्त व्यक्ति को मजिस्ट्रेट अथवा न्यायालय के समक्ष उस समय पेश नहीं किया जाता जब प्रतिप्रेषण के आदेश पारित किये जा चुके हैं तो वह इन सभी अवसरों से वंचित हो जाएगा।

40. यह कोई उत्तर नहीं है कि पिटीशनर को इस न्यायालय के आदेशों के अधीन नई दिल्ली लाया गया था और इसलिये सिटी मजिस्ट्रेट को लखनऊ में प्रतिप्रेषण आदेश पारित करना पड़ा। हम पहले ही यह

उल्लेख कर चुके हैं कि कोई अभ्यावेदन नहीं किया गया था और न ही प्रत्यर्थियों की ओर से 27 अगस्त, 1970 को किन्हीं निदेशों की तब प्रार्थना की गई जब 1970 का रिट पिटीशन सं० 315 स्थगित किया गया था। 28 अगस्त, 1970 के आदेशों के अधीन इस न्यायालय ने पिटीशनर को अपनी अभिरक्षा से मुक्त कर दिया और मूल अभिरक्षा में प्रत्यावर्तित कर दिया और यहां तक कि उसके मामले की सुनवाई की नई तारीख के नियत हो जाने के दौरान उसे लखनऊ ले जाने की भी अनुज्ञा दे दी। उत्तर प्रदेश के सम्बद्ध प्राधिकारियों ने उसे सम्बद्ध मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करने के लिये वापस लखनऊ ले जाने के अवसर का लाभ नहीं उठाया। इसके विपरीत वे इसी बात से संतुष्ट रहे कि नई दिल्ली स्थित कैदी के प्रतिप्रेषण का आदेश लखनऊ में बैठा मजिस्ट्रेट पारित कर दे। जसा कि हम अभिनिर्धारित कर चुके हैं ऐसा आदेश अवैध है और इसलिये ऐसे अवैध प्रतिप्रेषण आदेश के प्राधिकार पर पिटीशनर का निरोध भी अवैध है। ऐसी स्थिति उत्तर प्रदेश के प्राधिकारियों ने पैदा की है जिसके लिये वे स्वयं जिम्मेदार हैं।

41. परिणामतः हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि सिटी मजिस्ट्रेट, लखनऊ द्वारा पारित तारीख 28 और 29 अगस्त, 1970 के प्रतिप्रेषण आदेश अवैध हैं। इसके अतिरिक्त हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि 28 अगस्त, 1970 को अर्द्ध रात्रि के पश्चात् पिटीशनर का केन्द्रीय जेल, नई दिल्ली में अवैध प्रतिप्रेषण आदेशों के प्राधिकार पर निरोध भी अवैध है। परिणामस्वरूप पिटीशनर को तुरन्त मुक्त किया जाना चाहिये। रिट पिटीशन मंजूर किया जाता है।

रिट पिटीशन मंजूर किया गया।

श०